Bundelkhand Journal of Academic Research

# रामदरश मिश्र के उपन्यासों में बदलता ग्रामीण जीवन

**डॉ. अंकिता तिवारी**
**सहायक प्राध्यापक (हिंदी)**, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय बांदा, उत्तर प्रदेश।
(**Corresponding Author:** tiankita82@gmail.com)
**https://doi.org/10.5281/zenodo.23005486**

## सारांश

रामदरश मिश्र की पहचान उत्तर भारतीय ग्रामांचल कथाकार के रूप में रही है। मिश्र हिंदी साहित्य के प्रमुख कथाकार, कवि और साहित्यकार हैं। उनके उपन्यासों में भारतीय ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी, संवेदनशील और परिवर्तनशील चित्रण मिलता है। विशेष रूप से गाँव, किसान, मजदूर, निम्न–मध्यवर्ग, स्त्रियाँ, जातिगत संबंध, आर्थिक विषमता, शिक्षा, राजनीति तथा बदलते सामाजिक मूल्यों को उन्होंने अपने कथा–साहित्य का आधार बनाया है। गाँव के साथ उनके औपन्यासिक लेखन में आंचलिकता का प्रभाव भी दिखाई देता है। गँवई जीवन अनुभव उनके कथात्मक लेखन की अनन्य विशेषता रही। उनके उपन्यासों में गाँव का पूरा परिवेश झलकता है। ये उपन्यास आजादी के बाद के भारतीय गाँवों के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संक्रमण के ऐसे यथार्थपरक दस्तावेज हैं जिनमें गाँवों की संक्रमणकालीन स्थितियों के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही पक्ष समाहित हैं। रामदरश मिश्र उपन्यासों में भारतीय ग्रामीण जीवन की अनेक बनती–बिगड़ती छवियाँ हैं जिनमें भारतीय ग्रामीण जीवन की एक मुकम्मल पहचान उभरती है।

आलेख सूचना

**प्राप्त:** 09 अगस्त, 2026 **स्वीकृत:** 22 अगस्त, 2026 **प्रकाशित:** 30 सितंबर, 2026

**सारणी:** 00 **चित्र एवं ग्राफ:** 00 **स्रोत एवं संदर्भ:** 16

**मुख्य शब्द:** संक्रमण, आंचलिकता, दस्तावेज, अंतर्संबंध, यथार्थवाद, आत्मालोचन, द्वंद्व।

**1. परिचय एवं पृष्ठभूमि :** वर्ष 1924 से 2025 तक, एक शतक से एक वर्ष अधिक की अकल्पनीय सी लगती पारी खेलने के बाद रामदरश मिश्र ने भौतिक जगत को अलविदा कहा। अपने पीछे वे साहित्य की अनमोल धरोहर छोड़ गये, जिनमें समय और समाज की अनुगूंजें दर्ज हैं। रामदरश मिश्र हिंदी के उन विरले साहित्यकारों में से एक हैं जिन्होंने विधागत सीमाओं को अभिव्यक्ति की बाधा नहीं बनने दिया। एक तरफ वे कवि, गीतकार, गजलकार के रूप में सूक्ष्म मानवीय संवेदनाओं को स्वर देते हैं तो दूसरी तरफ कहानी, उपन्यास के वृहत्तर आयाम में मनुष्य की सामाजिकता और उनके पारस्परिक महीन अंतर्संबंधों, जीवन के जरूरी प्रश्नों, समसामयिक समस्याओं को शब्दों का जामा पहनाते हैं। शोध लेख के माध्यम से उनके उपन्यासों की विषयवस्तु के विश्लेषण के आधार यह समझने की कोशिश की गयी कि ग्रामीण जीवन में जो सामाजिक–सांस्कृतिक बदलाव आए हैं उनकी दिशा क्या है! वो कौन से कारक हैं जो इन बदलावों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। घर–गृहस्थी और पारिवारिक–नातेदारी संबंधों में किस तरह के बदलाव आए हैं और उससे समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है!

**2. विषय का विश्लेषण:** रामदरश मिश्र के डेढ़ दर्जन से अधिक उपन्यास प्रकाशित हैं, जिनमें से प्रमुख है––पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ, बीच का समय, सूखता हुआ तालाब, अपने लोग, रात का सफर, आकाश की छत, बिना दरवाजे का मकान, दूसरा घर, आदिम राग, नदी बहती है आदि।

पहला उपन्यास 1961 में प्रकाशित हुआ। कथा साहित्य में रामदरश मिश्र की पहचान आंचलिक कथाकार के रूप में है। आंचलिकता उनके अनुभव और अन्वेषण की मर्यादा नहीं दिशा है। मिश्र जी की कथावस्तु चाहे जो भी रहे, मन की सूक्ष्म अंतर्वेद्नाओं का चित्रण हो या समय और समाज को आईना दिखाते पात्रों की आवाज, मनुष्यता के न्याय के लिए चलने वाला समष्टिगत संघर्ष हो या व्यक्ति के नितांत निजी संबंधों की अन्तरंग दुनिया, उनके पैर हमेशा अपने अनुभव के जमीन पर रहते हैं, जो निःसंदेह गाँव का वह जीवन है जो उनके मूल में रचा–बसा है। मिश्र जी अपनी अभिव्यक्ति के आवश्यक उपकरण वहीं से जुटाते हैं। 'पानी के प्राचीर', 'सूखता हुआ तालाब', 'जल टूटता हुआ' मुख्य रूप से ग्रामीण यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली रचनाएँ हैं, इनके अतिरिक्त अन्य उपन्यास भले ही प्रत्यक्ष

रूप से गाँव से न जुड़े हों किन्तु उनके मुख्य पात्र अनुभव और सोच के धरातल पर हलके या गहरे रूप में गाँव से जुड़े हुए हैं। उनमें या तो गाँव की धरती से कट जाने की पीड़ा है या फिर गाँव की जड़ता और रूढ़िवादिता से मुक्त होने की छटपटाहट। ये पात्र शहर में रहकर भी वहाँ से जुड़ नहीं पाते। गाँव उनकी स्मृतियों में इस कदर बसा है कि उससे बाहर निकल पाना उनके लिए संभव नहीं हो पाता। इन स्मृतियों में कटु और मधुर की धूपछाहीं आवाजाही है। गाँव के प्रति रामदरश जी का नजरिया न तो घोर रोमांटिक है न ही अति यथार्थवादी। गाँव से नाभिनाल बद्ध उनकी चेतना वहां के रहन–सहन, संबंध, भला–बुरा सबको खूब पहचानती है।

'अपने लोग' उपन्यास की केंद्रीय संवेदना गाँव की उस टूटी–बिखरी जिन्दगी की पीड़ा से उद्भूत है, जिसके साथ लेखक की गहरी रचनात्मक सम्पृक्ति तो है ही, साथ ही उस जिन्दगी के यथार्थ को पहचानने वाली वह निर्मम तटस्थता भी है जो गहरे आत्मालोचन एवं विचार तथा संवेदन की गहरी संसक्ति से जन्म लेती है। इसके कथानायक 'प्रमोद' की अन्तःचेतना में गाँव के विविध स्तरीय जीवन की छवि अपनी समग्र ताजगी और जीवन्तता के साथ अंकित है, "उसने इस गाँव को इतनी गहराई से और इतने अधिक रूपों में जिया है कि इतने दिन तक शहर में रहने के बाद भी वह गाँव उसके भीतर बड़ी तड़प के साथ जिन्दा है।[1]"

इन गाँवों में निरंतर तेजी से बदलाव हो रहे हैं जो लेखक की दृष्टि से छिपे नहीं है। गाँवों में जो शहर की हवा पहुँच रही है उसके कारण युवा पीढ़ी कुछ अन्य ही रंग में रंगती जा रही है। 'अपने लोग' में प्रमोद अपने बेटे पवन के दिल्ली में बिगड़ने की बात कहते हैं तो उनके पिताजी कहते हैं– "अरे, अब तो गाँवों में भी ऐसे ही लड़के हो रहे हैं। पता नहीं कैसी हवा बही है कि ससुरे सारे लड़के ही ऐसे निकल रहे हैं– क्या शहर क्या देहात? ससुरे सभी फैशन के दीवाने हो रहे हैं।[2]" गाँव के बदलते व्यवहार से तंग आकर 'विलास' सोचता है– "गाँव में साले चोरों की संख्या दिन–दिन बढ़ती जा रही है। पहले तो दो–एक चोर थे अब तो क्या पूछना? ———हर साल उसके खेत कटते हैं, हर साल लोग बढ़कर उसका खेत जोत–बो और काट लेते हैं। ———जो लोग शहर आते हैं और उसके यहाँ ठहरते हैं, उनका स्वागत–सत्कार ही करता है लेकिन वे ससुरे गाँव जाकर उसी की घारी फूँकते हैं। अब गाँव के लोगों में न कृतज्ञता रह गयी है न दया रह गयी है, न न्याय–अन्याय की भावना रह गयी है। वह गाँव जाता है तो लोगों से हाथ जोड़कर ही बात करता है ताकि कोई भी उससे नाराज न हो लेकिन इन ससुरों को न अब खून चूसने में करुणा होती है, न मक्खी निगलने में घृणा।[3]" इसी उपन्यास में प्रमोद के पिता प्रमोद से कहते हैं– "और गाँव का कुछ न पूछो– लड़ाई–झगड़े, फूँक–ताप, चोरी–चिकारी का बोलबाला है। ———यह तो अब पुरानी बात हो गयी पिता जी। लगता है, ये गाँव नरक बनकर ही दम लेंगे। ———हाँ, बनकर दम क्या लेंगे, नरक हो ही गये हैं। हर आदमी दूसरे से शंकित सा डरा हुआ–सा चल रहा है। लोग अब एक–दूसरे से कटी हुई इकाईयाँ रह गये हैं जो चलते–चलते एक–दूसरे से टकराती जाती हैं और इसी टकराहट से सामाजिकता का बोध जगाती रहती हैं।[4]"

मिश्र जी के उपन्यासों में आने वाले गाँव पूर्वी उत्तर प्रदेश के भू–भाग से संबंधित हैं जो नदियों से घिरा हुआ क्षेत्र है। इन नदियों का पानी बाढ़ बनकर आता है और खेतों में खड़ी फसलों को अपने साथ बहाकर ले जाता है। वहाँ के लोग बेघर और बेसहारा हो जाते हैं। 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' दोनों की यही समस्या है।

रामदरश मिश्र के उपन्यासों में सामाजिक तानो–बानों के बदलते रूप देखने को मिलते हैं। सामूहिक जीवन, संयुक्त परिवार गाँव की विशेषता है और आवश्यकता भी। किन्तु अब गाँवों में भी परिवार का साथ रह पाना टेढ़ी खीर हो गया है।

'जल टूटता हुआ' में 'धनपाल'और 'बनवारी' के संयुक्त परिवार के विघटन की घटना के द्वारा पारिवारिक मूल्यों के ह्रास का परिचय मिलता है। पारस्परिक प्रेम और सौमनस्यपूर्ण व्यवहार की जगह"...परिवार में अब गाँठ पड़ गई, रोज–रोज यह परिवार कहीं न कहीं टकरा जाता है। ———बस झगड़ा ही झगड़ा ———घर नरक–सा बन गया।[5]"

रामदरश मिश्र के उपन्यास 'बीस बरस' में बीस बरस बाद गाँव आये पत्रकार दामोदर वहाँ की एक शादी में लड़के वालों के तेवर देखकर दुःखी हो जाते हैं। उनका भतीजा बताता है –"साला कह रहा है कि मैंने कुछ माँगा ही नहीं। अरे काशी चाचा ने अपने जीवन भर का बचाया हुआ पैसा इस शादी में झोंक दिया, फिर भी तिलक पर मोटर साइकिल नहीं चढ़ी तो नाराज हो गया था। धमकी दी कि मोटर साइकिल नहीं पहुँची तो बरात नहीं आयेगी।[6]" दामोदर कहते हैं–"कितने लालची और बेशर्म हो गये हैं लोग। लड़की वाले की बोटी–बोटी नोच लेंगे और कहेंगे कि हमने तो कुछ माँगा ही नहीं।[7]"

गाँव–देहात में त्यौहारों पर जिन रीति–रिवाजों का पालन हुआ करता था, समय के साथ–साथ उनमें परिवर्तन आने लगा है। अब लोग परम्पराओं का निर्वहन करने के लिए उतना उत्साह नहीं दिखाते, न ही अपना समय, इन सब में नष्ट करना पसन्द करते हैं। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'बीस बरस'में बीस वर्षों के पश्चात् अपने गाँव लौटे पत्रकार महोदय गाँव के बदलते स्वरूप को देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। उनका कहना है कि कुछ परम्पराओं का बदलना उस स्थिति में लाभदायक ही है जब वह बर्बादी को रोकती हैं। किन्तु उनका भतीजा बताता है कि यह सब बर्बादी रोकने के लिए नहीं है व्यक्तिगत स्वार्थ ही इन सब में मुख्य भूमिका निभाता है– "ये इंजीनियर साहब जो हैं न, परम्परा के मामले में बहुत कायर हैं। पूजापाठ करते हैं, साइत–वोइत देखकर यात्र करते हैं, जोग–टोट में विश्वास करते हैं, छुआछूत को खूब मानते हैं लेकिन सब अपने स्वार्थ के लिए। इसके पीछे उनका कोई

नैतिक विश्वास नहीं है। होली इसलिए उखाड़ कर फेंक दी कि उनका खेत आहत होगा। लेकिन होली कहीं और गड़ी तो जलने के समय उन्हें हाथ जोड़े पायेंगे।[8]"

पत्रकार दामोदर कहते हैं– "यानी शहर से गाँव तक अब संस्कृतियों का उत्सव ठंडा पड़ गया है। अपने स्वार्थोत्सव और राजनीतिक जोड़–तोड़ में व्यस्त लोगों को अब फुरसत नहीं कि वे सांस्कृतिक उत्सवों में एक साथ मिलकर अपनी ठेठ आदमियत का साक्षात्कार कर सकें। अपने बँटते हुए सुख–दुःख को कुछ समय के लिए एक साथ जोड़ सकें।[9]" आगे भी यही दुःख उन्हें कचोटता है– "सचमुच कितना कुछ बदल गया है। पहले तो किसी के यहाँ लड़के या लड़की की शादी गाँव भर के लिए उत्सव हुआ करती थी। जिस दिन शादी तय होती थी उसी दिन से एक चहल–पहल वातावरण में भर जाती थी और शादी वाले व्यक्ति के दरवाजे पर लोगों का आना–जाना लगा रहता था।[10]" सुभाष फिर मुस्कुराया और बोला– "कब की बात कर रहे हैं चाचा जी। अब तो लोग–बाग शादी के अवसर पर अपने कामधाम से छूट कर अतिथि की तरह थोड़ी देर के लिए जाते हैं और फिर लौट जाते हैं। घर वाले ही हर अवसर पर जूझते रहते हैं।[11]"

गाँव के बारे में 'बीस बरस' उपन्यास का 'हरीश' कहता है– "अरे चाचा, यहाँ रखा भी क्या है? गन्दी राजनीति के दलदल में फँसे गाँवों में कोई क्यों आना पसन्द करेगा? और यहाँ सुविधा ही क्या है जो शहर का आदमी यहाँ आना चाहेगा?[12]" 'मंजुल' भी गाँव के बारे में कहता है– "राजनीति के कारण गाँव में इतना अकेलापन आ गया है कि पूछिए मत। तर–त्यौहार, शादी–ब्याह, जनम–मरण सभी अवसरों पर लोग बहुत अकेले दिखाई पड़ रहे हैं। कोई किसी के साथ नहीं होता। बस दो–चार बहुत सगे या दोस्त एकत्र हो आते हैं।[13]"

इसी उपन्यास में एक पति–पत्नी के माध्यम से ग्रामीण परिवेश की सत्यता उजागर होती है। शहर में रहने वाले पति–पत्नी का गाँव में पैतृक मकान है। पति को जब असाध्य रोग हो जाता है तो वह अपनी पत्नी को ढांढस बंधाता है कि पति की मृत्यु के पश्चात् वह गाँव चली जाए, वह कहता है –"तुम जानती नहीं, गाँव का जीवन कितना सुखमय है। यहाँ तो किसी से किसी को मतलब नहीं। सब कुछ पैसा ही है यहाँ। मनुष्यत्व नाम की कोई चीज नहीं, हर जगह सिर्फ मक्कारी है– फरेबी। लेकिन गाँव में देखो। थोड़े में ही लोग कितने संतुष्ट और सुखी हैं। एक–दूसरे के दुःख–दर्द में लोग कितना साथ देते हैं। बड़े–बुजुर्गों की कितनी इज्जत है। किसी के घर चोरी होती है तो हल्ला सुनते ही लाठी–भाला लेकर लोग जुट जाते हैं। कोई किसी के साथ मनमानी नहीं कर सकता। विधवा औरतों को लोग देवी की तरह समझते हैं–––। किंतु उसके पति द्वारा दिखाया गया गाँव का यह रूप 'दूर के ढोल' ही सिद्ध हुआ। वहाँ जाकर उसे पता चला कि यहाँ तो शहरों से भी बुरी हालत थी। –––महीने में एक–दो बार खून–खराबा और जानमारी की घटनाएँ भी हो जाती हैं। लाख गला फाड़कर चिल्लाने पर भी रक्षा के लिए कोई जुटता नहीं। –––लोगों में आपसी बैर बहुत अधिक बढ़ गया है। लोग एक–दूसरे के खलिहानों में आग लगा देते हैं। गाँव के आधे से अधिक लोग 'राजनीति' में घुस आये हैं।[14]"

'जल टूटता हुआ' में आजादी के बाद के सालों में उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के गाँवों में जो परिवर्तन आये, उन्हें दिखने की कोशिश की गयी है। गाँवों का सामजिक यथार्थ बदल रहा है। वहां की सामजिक–राजनीतिक शक्तियों, सामूहिकता की भावनाओं, आपसी रिश्तों और आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन हो रहे हैं। साथ ही यह भी दृष्टव्य है कि बहुसंख्यक किसानों के जीवन की दरिद्रतापूर्ण परिस्थितियों का सत्य नहीं बदलता। उपन्यास का एक चरित्र मास्टर सुग्गन कहता है, "सरकार बहुत कुछ कर रही है, जमींदारी तोड़ रही है, स्कूल खोल रही है, सबको बोलने की स्वतंत्रता दी, सबको सामान अधिकार दिया, मताधिकार तो सबसे बड़ा अधिकार है, पंचायत राज की स्थापना हो रही है, लोगों के भय को दूर किया जा रहा है, गाँवों के सुधार की योजना बड़े जोर–शोर से कार्य कर रही है, खेतों के विकास के लिए बिजली के कुँओं का इंतजाम हो रहा है।[15]" लेकिन यह सारा तंत्र ऊपर ही ऊपर चलता रहा, समाज की वास्तविकता का अंग वह नहीं बना था। 15 अगस्त के समारोह से लौटते हुए मास्टर सुग्गन सोचते हैं, "इतने साल हो गये आजादी को मिले हुए। यह अभागी जिन्दगी टस से मस नहीं हुई। पानी की फुंकार वैसे ही हमारी फसलों पर पछाड़ खाकर लोटती रहती है, इस साल भी यह पछाड़ खेतों का हाड–तोड़ कर रहेगी। रबी की फसल को भी जाने क्या हो गया है। जब खरीफ लुट जाती है तो रबी भी रूठ जाती है। जेठ गुजरे अभी तो दो मास भी नहीं हुए कि सारा अन्न साफ।[16]" लेखक दिखाता है कि आजादी के बाद बनी योजनाओं से, नए तंत्र से वे सपने पूरे नहीं हुए जिनके लिए लोग लड़े थे। गरीबों की समस्याओं में कोई फर्क नहीं पड़ा।

'सूखता हुआ तालाब' ग्रामीण जीवन की सामूहिक जिंदगी में लगे घुन और उसमें व्याप्त टूटन एवं विभिन्न विसंगतियों का एक ऐसा चित्र है जिसमें समस्त गाँव अपने आडम्बरों, अपने रीति–रिवाजों एवं अपनी छवियों, अछवियों को लेकर प्रस्तुत हुआ है। गाँव की अन्तरंग यात्रा में आज गाँव में उभरते भौतिकवादी युग के प्रभावों की छाया स्पष्ट परिलक्षित होती है। संबंधों के बदलाव एवं मूल्यबोध से वहां नयी मानसिकता उभर रही है। रामदरश मिश्र पात्रों के साथ लगातार यात्रा करते रहे हैं। इस तरह वह पात्रों के सुख–दुख के ही भागीदार नहीं बनते, बल्कि उनकी एक–एक गतिविधि के भी गवाह बनते हैं। यह जरूर है कि वह चूँकि स्वयं एकाकी जीवन नहीं जीते, न हीं अकेले और संत्रास की पीड़ा के हिमायती हैं इसलिए उनके कथा लेखक का मुख्य आधार सामाजिक सरोकार ही है। वह बहुत सहज होकर जीने और सहज जिन्दगी के जुड़ाव के निकट हैं। अतः उनके पात्र किसी विशिष्ट वर्ग का

प्रतिनिधित्व नहीं करते, न ही चौंकाने के लिए वे किन्हीं खास मुद्राओं को अपनाते हैं। गांव से शहर तक आज जो जिन्दगी जन साधारण में फैली हुई है, उसी में जी रहे पात्रों से वह अपना परिचय गहरा करते हैं, जो धीरे–धीरे इतनी निकटता में बदल जाता है कि वे पात्र के मन में छिपे दर्द को बाहर तक खींच लाने में सफल हो जाते हैं।

**3. परिचर्चा :** रामदरश मिश्र के उपन्यासों में गाँव किसी आदर्श या काल्पनिक संसार के रूप में नहीं, बल्कि संघर्षों और अंतर्विरोधों से भरे वास्तविक सामाजिक जीवन के रूप में सामने आता है। ग्रामीण व्यक्ति प्राकृतिक परिस्थितियों, गरीबी, बेरोजगारी, ऋण, सामाजिक रूढ़ियों और आर्थिक असमानताओं से जूझता दिखाई देता है। उनके ग्रामीण पात्र अपनी परिस्थितियों के केवल शिकार नहीं हैं, बल्कि वे बदलते समय के साथ अपने जीवन को बेहतर बनाने का प्रयास भी करते हैं।

रामदरश मिश्र के ग्रामीण जीवन–चित्रण की विशेषता यह है कि प्रकृति और मनुष्य का संबंध उनके कथा–संसार में गहराई से जुड़ा हुआ है। खेत, नदी, वर्षा, सूखा, मिट्टी, पेड़–पौधे और ऋतुएँ ग्रामीण जीवन की परिस्थितियों तथा पात्रों की मनःस्थितियों को प्रभावित करती हैं। इसलिए उनके यहाँ ग्रामीण जीवन केवल सामाजिक संरचना नहीं, बल्कि प्रकृति, मनुष्य और संस्कृति के पारस्परिक संबंध का संसार है।

इस तरह रामदरश मिश्र के उपन्यासों में बदलता ग्रामीण जीवन भारतीय समाज में हो रहे व्यापक परिवर्तन का प्रतिबिंब है। उनके यहाँ गाँव न तो पूरी तरह परंपरागत है और न ही पूरी तरह आधुनिक, वह दोनों के बीच संक्रमण की अवस्था में है। उनके ग्रामीण संसार में किसान, मजदूर, स्त्री, युवा, निम्न–मध्यवर्ग और वंचित वर्ग अपनी–अपनी परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। शिक्षा, राजनीति, बाजार, नगरीकरण, पलायन और आधुनिक चेतना ने ग्रामीण जीवन को बदल दिया है, लेकिन गरीबी, असमानता, जातिगत भेदभाव और सामाजिक रूढ़ियाँ अभी भी मौजूद हैं। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि रामदरश मिश्र के उपन्यासों में बदलता ग्रामीण जीवन केवल गाँव के परिवर्तन की कथा नहीं, बल्कि स्वतंत्रता–उत्तर भारतीय समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूपांतरण का दस्तावेज है।

**निष्कर्ष :** उपर्युक्त के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रामदरश मिश्र गाँव की जड़ों से जुड़े हुए लेखक हैं। किसी भी पृष्ठभूमि की रचना वे क्यों न करें, कहीं न कहीं से ग्राम्य जीवन की कुछ झलकियाँ उसमें अवश्य ही आ जाती हैं। ग्रामीण जीवन का यथार्थ परिवेश और मूल्यबोध का बदलाव उनकी प्रमुख चिंता है जिसे वे बिना किसी संकोच के प्रकट करते हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव, शहर की ओछी नकल की बनावट ने ग्रामीण सरलता को ग्रहण लगा दिया है। मिश्र जी के उपन्यासों के विस्तृत संसार में ग्रामीण जीवन की समस्याएं, परिवर्तित मूल्यों का संकट, तीज–त्यौहार, पर्व के चुपचाप दम तोड़ते उत्साह अपने पूरे सच के साथ मौजूद हैं। इनके विस्तृत फलक में स्वतंत्रता पूर्व से लेकर आधुनिक समय तक के गाँवों के बदलते चरित्र और परिवेश को देखा जा सकता है।

## स्रोत एवं संदर्भः


1. मिश्र, रामदरश (1976)। अपने लोग (उप.), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ–148
2. वही, पृष्ठ–81
3. वही, पृष्ठ–197
4. वही, पृष्ठ–232
5. मिश्र, रामदरश (1969)। जल टूटता हुआ (उप.), हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, पृष्ठ–67
6. मिश्र, रामदरश (1996)। बीस बरस (उप.), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–120
7. वही
8. वही, पृष्ठ–15
9. वही, पृष्ठ–22
10. वही, पृष्ठ–113
11. वही
12. वही, पृष्ठ–10
13. वही, पृष्ठ–47
14. वही, पृष्ठ–38
15. मिश्र, रामदरश (1969)। जल टूटता हुआ (उप.), हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, पृष्ठ–77
16. वही, पृष्ठ–102


=====


| | |
|---|---|
| **आलेख उद्धरित करें :** | तिवारी, डॉ.अंकिता (2026)। रामदरश मिश्र के उपन्यासों में बदलता ग्रामीण जीवन। बुंदेलखंड जर्नल ऑफ अकादमिक रिसर्च (बीजेएआर), वॉल्यूम–2, अंक–3, जुलाई–सितंबर, 2026, पृष्ठ 11–14। https://doi.org/10.5281/zenodo.23005486 |